Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 11, Issue 01, January-June, 2023
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2023

उत्तर एवं दक्षिण भारतीय अवनद्ध संगति: एक तुलनात्मक अध्ययन

DR. VIVEK KUMAR JAIN

Assistant Professor (Music), N 11/73 D Ranipur, Mahmoorganj Varanasi, U.P.

सार

अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति का मूल उद्देश्य गीत वाद्य की संगति करना है जो उत्तर दक्षिण दोनों ही जगह एक समान है। प्राचीन काल में अवनद्य वाद्यों का प्रायोजन केवल गीत वाद्यों का उपरंजन करना ही था तथा काल मान का कार्य धन वाद्यों द्वारा किया जाता था परंतु कालांतर में अवनद्य वाद्यों के प्रायोगिक स्वरूप में परिवर्तन आया और गीत वाद्य के उपरंजन के साथ कालमान का कार्य भी अवनद्ध वाद्यों द्वारा किया जाने लगा। इस प्रकार वर्तमान में स्थिति यह है कि गीत वाद्य का उपरंजन तथा काल मान यह दोनो कार्य उत्तर भारत में प्रमुख रूप से तबला ने ले लिया है जबकि दक्षिण में मृदंगम आदि वाद्यों का मूल उद्देश्य आज भी गीत वाद्यों का उपरंजन करना ही है। इस अंतर का प्रमुख कारण है उत्तर भारत में विकसित ठेका पद्धति। यद्यपि दक्षिण में ठेका नही है क्योंकि वहाँ छंद प्रधान संगति की प्रधानता है तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है की दोनों पद्धति के संगति प्रकारों में अंतर होते हुए भी संगति की मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से कुछ पारस्परिक समानताएं हैं जो दोनों संगीत पद्धति के एक ही प्राचीन उद्गम स्थान का संकेत देती हैं।

बीज शब्द: तबला संगति, अवनद्धसंगति, मृदंगम संगति, सर्वलधुपद्धति, ठेके की संगत, छंद संगति, गायकी शैली

प्रस्तावना

अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति का मूल उद्देश्य गीत वाद्यों की संगति करना है जो उत्तर दक्षिण दोनों ही जगह एक समान है। प्राचीन काल में अवनद्ध वाद्यों का प्रयोजन केवल गीत वाद्यों का उपरंजन करना ही था तथा काल मान का कार्य घनवाद्यों द्वारा किया जाता था परन्तु कालान्तर में अवनद्ध वाद्यों के प्रायोगिक स्वरूप में परिवर्तन आया और गीत वाद्यों के उपरंजन के साथ कालमान का कार्य भी अवनद्ध वाद्यों द्वारा सम्पन्न होने लगा। "वर्तमान लक्ष्य में भी हाथ या पैर के द्वारा ठोंक देकर ताल के आवर्तन को बनाए रखने की प्राचीन प्रणाली में ताल का मूल रूप तो सुरक्षित है क्योंकि ध्रुपद गायक के लिए स्वयं हाथ से ताल देकर गाना आज भी अनिवार्य माना जाता है लेकिन गीत वाद्य का मान करने के लिए घन वाद्य का स्थान आज अवनद्ध वाद्यों ने उत्तर भारत में मुख्य रूप से तबले ने ले लिया है"[1] यद्यपि दक्षिण भारतीय संगीत में भी घनवाद्यों का प्रयोग नागस्वरम् वादन तथा भरतनाट्यम नृत्य को छोड़कर अब समाप्त हो चुका है इस दृष्टि से उत्तर तथा दक्षिण दोनों तरफ स्थित एक सी है परन्तु दक्षिण में अवनद्ध वाद्यों का मुख्य प्रयोजन आज भी प्राचीन के समान उपरंजन ही है इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि दक्षिण में मृदंगम आदि वाद्यों की संगति में अवनद्ध संगति का प्राचीन स्वरूप आज भी सुरक्षित है। इस संदर्भ में प्रख्यात संगीत शास्त्री प्रो॰ लालमणि मिश्र का कथन है कि "कर्नाटक संगीत को सुनकर प्राचीन मृदंग वादक किस प्रकार संगति करते थे यह सामान्य रूप से जाना जा सकता है।"[2] इस प्रकार एक ही वृक्ष की दो शाखाओं के समान प्राचीन भारतीय संगीत से विकसित दोनों संगीत पद्धतियों में अवनद्ध संगति के प्रायोगिक स्वरूप और प्रस्तुतिकरण में कुछ समानताएं होते हुए भी पर्याप्त अंतर दृष्टिगोचर होता है जो निश्चय ही कौतूहलपूर्ण होने के साथ ही जिज्ञासा का विषय है। प्रस्तुत प्रपत्र में उपरोक्त विषय पर यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

प्राचीन त्रिपुष्कर (अवनद्ध) संगति

जहाँ तक प्राचीन मृदंग संगति की बात है। तो महर्षि भरत ने नाट्य में तीन प्रकार से पुष्कर वाद्यों (भरत ने अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, पणव, दर्दर इन तीनों वाद्यों को प्रमुख मान कर इन्हें पुष्कर तथा त्रिपुष्कर नाम से अभिहित किया है)[3] की उपयोगिता बतायी है।

- 'वर्ण के अनुसार– कुछ वाद्यों में कुछ वर्णों की उत्पत्ति मानी गयी है। "नाट्य में जो गीत चल रहा है उसमें जिन वर्णों का प्रयोग हो रहा है यथा संभव उन्हीं वर्णों का प्रयोग पुष्कर वाद्यों में होना चाहिए जहाँ कठोर है वहाँ कठोर वर्णों का और जहाँ कोमल वर्ण हो वहाँ कोमल वर्णों का प्रयोग होना चाहिए"[4]

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 11, Issue 01, January-June, 2023
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2023

- स्वर के अनुसार – "गायन वादन में अगर पंचम स्वर है तो अवनद्ध वाद्य को भी पंचम में मिलाकर संगति करनी चाहिए नाट्य में जिस स्वर को अंश या प्रधान बनाया है उसी स्वर में पुष्कर को मिला लेना चाहिए।"[5]
- ताल के साम्य से - "नाट्य में जिंस ताल का प्रयोग हो रहा हो उस ताल के अनुसार ही पुष्कर को उपरंजन करना चाहिए लघु गुरु आदि वर्णों के अनुसार वादन होना चाहिए।"[6]

इसके अतिरिक्त भरत ने ताल वाद्यों के वादन में आठ प्रकार के साम्य की आवश्यकता पर बल दिया है। यह साम्य गीत, नृत्यादि की संगति के लिए नितांत आवश्यक होता था जिसके अभाव में ताल वाद्यों का प्रयोग संगीतानन्द में वृद्धि की अपेक्षा उसका ह्रास करने वाला माना जाता था। इन आठ साम्यों का वर्णन महर्षि भरत ने इस प्रकार किया है-

- अक्षर साम्य- गीत के अक्षरों के अनुरूप बोलों की योजना।
- अंग-साम्य- ध्रुवा गीतों के प्रारम्भ, अन्त की कला तथा अन्तरकला के समान वादन को अंग साम्य कहते हैं।
- ताल साम्य- गान के आकार में जिस प्रकार की कला तथा ताल प्रयुक्त हो उसी के समान वादन करना ताल साम्य है।
- लय साम्य- गान की विलम्बित, मध्य, द्रुत आदि जैसी गति हो उसी के अनुसार वादन करना लय साम्य कहा जाता है।
- यति साम्य- समा, स्त्रोतोगता तथा गोपुच्छा आदि जिस यति का गान में प्रयोग हो तदनुसार वादन करना यति साम्य है।
- ग्रह साम्य- तत, अवनद्ध वाद्यों तथा वंशी में गान की श्रुति से एकरूपता ग्रह साम्य
- न्यासापन्यास - साम्य गीत के न्यास तथा अपन्यास स्वरों का जिस प्रकार प्रयोग होता है उसी प्रकार यदि मृदंग में भी वादन किया जाए तो न्यासापन्यास - साम्य कहेंगे। न्यासापन्यास का प्रयोग भरतकालीन मृदंग में हो सकता था क्योंकि वह तीन हिस्सों और मुखों वाला होता था तथा प्रत्येक मुख भिन्न-भिन्न स्वरों में मिलाया जाता था।
- पाणि साम्य- जब गीत अथवा वाद्य की संगति समपाणि अर्ध-पाणि और उपरिपाणि की विधियों से की जाती है तब उसे पाणि-साम्य कहते हैं। इस प्रकार भरत ने आठ प्रकार के साम्य के द्वारा तत्कालीन मृदंग संगति के प्राचीन स्वरूप का निरूपण नाट्यशास्त्र में किया है।

प्राचीन भरतोक्त अवनद्ध (त्रिपुष्कर)संगति का जो लक्षण यहाँ दिया गया है वर्तमान लक्ष्य में उसका प्रायोगिक स्वरूप कैसा है यह जानलेने से पूर्व वर्तमान उत्तर तथा दक्षिण भारतीय अवनद्ध संगति को जान लेना आवश्यक है।

वर्तमान दक्षिण भारतीय अवनद्ध संगति

जैसा कि पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है की वर्तमान दक्षिण भारतीय अवनद्ध संगति आज भी उपरंजन प्रधान होने के कारण अवनद्ध (त्रिपुष्कर) संगति की प्राचीन पद्धति के अधिक निकट है, तथापि मनोधर्म (मनःसंकल्पना) तथा तत्काल सृजन कला होने के कारण दक्षिण भारतीय अवनद्ध संगति को लिपिबद्ध करना एक कठिन कार्य है। अन्य शब्दों में, दक्षिण भारतीय संगीत में अवनद्ध संगति का कोई निश्चित विधान नहीं जिसके माध्यम से इसकी एक सटीक तथा सुनिश्चित व्याख्या की जा सके। इस संदर्भ में प्रख्यात दक्षिण भारतीय मृदंगम विद्वान त्रिची संकरन लिखते हैं -

“The art of mridangam accompaniment in Karnataka tradition is very difficult subject to write about. In fact, no written account has dealt with this subject in adequate manner.”[7]

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 11, Issue 01, January-June, 2023
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2023

सर्वलघु पद्धति

सर्वलघु ताल के आवर्तन और स्वरूप को धारण करने वाली एक सरल पद्धति है जिसके द्वारा मुख्य कलाकार को सरल सुमधुर संगत प्रदान की जाती है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, सर्वलघु अर्थात् जहां सब लघु है। इस मत से ताल की सभी मात्राओं का मान समान होता है तथा मृदंगम् वादक ताल की प्रत्येक मात्रा को स्पष्ट रूप से दर्शाते हुए संगति प्रदान करता है। अन्य शब्दों में सर्वलघु, तालगत ढांचे के अन्तर्गत समान गति से प्रसारित होने वाली एक सरलतम तथा बहुप्रचलित पद्धति है। जिसमें ताल की प्रत्येक मात्रा आघात द्वारा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। सर्व लघु का शाब्दिक अर्थ है 'सदा सरल - लेकिन लाक्षणिक रूप से इसका अर्थ है सरल, समझने में आसान, सार्वभौमिक रूप से लागू होने वाले आघात प्रकार जो मूल रूप से प्रकृति में सौंदर्यवादी हैं।

दक्षिण भारतीय मृदंगविद्वान डॉ टी वी गोपालकृष्णन के अनुसार- “Sarva laghu literally means 'always simple - but figuratively it means uncomplicated, easy to understand, universally applicable beat patterns which are basically aesthetic in nature”[8]

यह ताल धारण करने की आधारभूत पद्धति है जिसे उत्तर भारतीय संगीत के 'ठेका' से नैकट्य रखने वाले प्रकार के रूप में समझा जा सकता है।

विद्वान त्रिची संकरन के अनुसार- ‘A fundamental pattern outlining a tala, very much like that of tekha in Hindustani drumming Hence some drummers even call sarvalaghu a tekha-In other words, it is a time keeping pattern.’[9]

मृदंगम् विद्वान Pregalathan Singaram के अनुसार- "Sarvalaghu is a simple rhythimic pattern that is used to basically outline the tala and the tempo during a performance. In Hindustani music this is called “Tekha". In other words it is a time-keeping pattern.[10]

विद्वानों के उपरोक्त विवेचन से कर्नाटक संगीत में सर्वलघु की अवधारणा पूर्णतया स्पष्ट है।

अवनद्ध संगति में सर्वलघु का स्वरूप

दक्षिण भारतीय संगीत में सर्वलघु प्रकारों का प्रयोग उनकी सरलता सहजता तथा अबाधक प्रवृत्ति के कारण बहुलता से किया जाता है। मुख्य कलाकार, संगत कलाकार तथा श्रोता सभी सर्वलघु की सहज स्वाभाविक गति से परिचित होते हैं अतः यह सभी को समान रूप से आनंदित कर संगति में सहजता का समावेश करने वाली एक शैली है।

"The Sarvalaghu patterns are mostly used during accompaniment because of their simplicity, unobtrusive quality and ostinato sytles."[11]

सर्वलघु के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिये कुछ प्रकार यहाँ दिए जा रहे हैं।

आदि ताल (8 मात्रा काल)

तत्झेम	ततझेम	तकझेम	तत्झेम
तत्झेम	ततझेम	तकझेम	तत्झेम[12]

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 11, Issue 01, January-June, 2023
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2023

इसका प्रयोग विलम्ब काल मध्यम काल तथा द्रुतकाल सभी गतियों में आसानी से किया जा सकता है इसके विपरीत कुछ सर्वलघु प्रकार ऐसे होते हैं जो किसी निश्चित गति में ही प्रयुक्त होते हैं। यथा- द्रुत काल सर्वलघु प्रकार

तण तझे णुत झेणुं तझे णुत णत झेणु[13]

ताल खण्डचापू (5 मात्रा काल)

din	-	ta	na	ta	jo	nu	ta	na	ta
din	-	ta	na	ta	jo	nu	ta	na	ta[14]

संगति की अन्य प्रमुख पद्धति पल्लवी शैली अथवा गायकी शैली

पल्लवी शैली अर्थात् मुख्य कलाकार की प्रस्तुति के अनुसार संगति, जिसे गायकी शैली के रूप में भी जाना जाता है। यह दक्षिण भारतीय अवनद्ध संगति की सबसे प्रमुख विशेषता है तथा कर्नाटक संगीत में अवनद्ध संगति का अत्यन्त तकनीकी पक्ष है। सर्वलघु पद्धति का स्वरूप जहाँ तालगत ढांचे तथा अंगों पर आधारित होता है वही गायकी पद्धति, रचना के स्वरूप तथा उसके ढांचे पर आधारित होती है। अतः मृदंगम् वादक रचना के चलन (छन्द) तथा जरब (आघात) का अनुसरण करते हुए संगति प्रदान करता है। अन्य शब्दों में मृदंगम् वादक मुख्य कलाकार की रचना के साहित्य (वाद्यों में स्वराघात) की अनुकृति मृदंगम् आदि अवनद्ध वाद्यों पर करने का प्रयास करता है।

मृदंगम् वादक 'जयचन्द्र राव के अनुसार- "In gayaki style you follow the main artist. You associate with the main artist. what ever he is trying to sing you also try to adopt the same thing in your playing. it is just shadow of the vocalist."[15]

गायकी शैली द्वारा अवनद्ध संगति के स्वरूप को रागम 'हंसध्वनि' में प्रसिद्ध रचना 'वातापि गणपतिम् भेजहम्' के निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

रचना :	वा	-	-	ता	-	पि	ग	ण	प	तिं	-	भ	जे	-	हं	-
मृदंगम् :	तां	-	-	तां	-	ताकिट	तकतरि	किटतक	तां	तां	-	तां	-	तां	-	तां
रचना :	-	वा	-	ता	-	पि	ग	ण	प	तिं	-	भ	जे	-	हं	-
मृदंगम् :	-	तां	-	तां	-	त	तां	-	तां	-	-	त	-	तां	तां	-[16]

उपरोक्त लिपिबद्ध साहित्य तथा उसके साथ मृदंगम् के अक्षर (पाट) को देखने से पल्लवी शैली के अंतर्गत मृदंगम संगति के दौरान साहित्य की अनुकृति का स्थूल आभास यहाँ दृष्टिगोचर है।

उत्तर भारतीय अवनद्ध संगति

उत्तर में संगति का प्रमुख आधार तबला पखावज में ठेका है यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, आज संपूर्ण उत्तर भारत में संगति के लिए ठेका पद्धति का प्रचलन है। प्रत्येक ताल के लिए अलग अलग ठेका निर्धारित है। आज उत्तर में स्थिति यह है की एक

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 11, Issue 01, January-June, 2023
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2023

विद्यार्थी को ठेके का ज्ञान न हो तो उसका तालज्ञान ही अधूरा माना जाता है। ''वस्तुतः संगति के नियमों को दायरे में नहीं बांधा जा सकता।''[17] फिर भी प्रयोग के आधार पर इसे मुख्य रूप से निम्न भागों में बांटा जा सकता है-

ठेके की संगत

यह उत्तर भारतीय अवनद्ध संगति का सबसे महत्वपूर्ण तथा आधारभूत प्रकार है जिसमें उत्तर भारतीय ताल पद्धति की मूलभूत विचारधारा ठेका के रूप में सन्निहित है। इसके अंतर्गत तबला पखावज वादक मुख्य कलाकार को ठेके के द्वारा संगति प्रदान करते हैं इसमें भी दो प्रकार हैं पहला वो जिसमें ताल का ठेका शुद्ध रूप से बजाया जाता है जिसे सीधा ठेका कहा जाता है तथा दूसरा भराव का ठेका जिसमें ताल का ठेका कुछ आवश्यक बोल भराव के साथ सौंदर्यपूर्ण ढंग से बजाया जाता है। इसका प्रयोग प्रबल रूप से शास्त्रीय गायन की विलंबित रचनाओं में देखने को मिलता है

संगति के दूसरे प्रकार को कलात्मक संगति के रूप में समझा जा सकता है जिसमे संगतकार ठेका बजानेके अतिरिक्त छोटे छोटे टुकड़े तिहाई इत्यादि का प्रयोग कर कलात्मक ढंग से संगति प्रदान करते हैं इसका प्रयोग गायन की द्रुत चपल बन्दिशों में तथा तंत्री वाद्यों की संगत में देखने को मिलता है।

संगति का तीसरा प्रकार है- अनुसंगति "इसके अंतर्गत जब कोई कलाकार अपनी रचना प्रस्तुत करता है तब तबला वादक सीधा ठेका बजाता रहता है और प्रमुख कलाकार की रचना समाप्त होने पर वह अपनी रचना प्रस्तुत करता है चूँकि इसमें ताबलिक मुख्य कलाकार का अनुसरण करता हुआ अपनी रचना प्रस्तुत करता है अतः इसे अनुसंगति कहते हैं"[18] डॉ॰ सुनीता श्रीवास्तव के अनुसार- ''इसमें मुख्य कलाकार चलती लय में अपनी कोई बात को विशेष ढंग से प्रस्तुत करता है जिसे ताल वादक ताल की दूसरी आवृत्ति में उसी मात्रा में उठाकर उसका प्रत्युत्तर देता है इस तरह यह सिलसिला चालू रहता है और अंत में दोनों एक साथ तिहाई लगाकर सम पर आते हैं''[19]

संगति का चौथा प्रकार है सहसंगति "इसे साथ संगति और लड़ंत की संगति भी कहा जाता है इसमें तबला वादक और मुख्य कलाकार प्रतिद्वंदात्मक रूप से अपनी अपनी कला कौशल का साथ साथ परिचय देते हैं।[20] जिसे हम ध्रुपद धमार की गायकी के समय देख सकते हैं।

तुलनात्मक विश्लेषण

उपरोक्त समस्त तथ्यों का अध्ययन करने पर कुछ महत्वपूर्ण बातें दृष्टिगोचर होती हैं यथा –

उत्तर में संगत का मुख्य आधार तबले में ठेका है। दक्षिण में ठेका नहीं है किन्तु मिलता जुलता सर्वलघु प्रकार है और मुख्य रूप से दो प्रकार की संगति है पहला, पल्लवी शैली यानी गायकी शैली तथा दूसरा सर्वलघु पद्धति, फिर भी गायकी शैली का प्राधान्य ज्यादा है जिसमें मुख्य कलाकार के गीत और छन्द का अनुकरण करते हुए संगति प्रदान की जाती है। उत्तर भारतीय पखावज संगति का भी स्वरूप भी ऐसा ही है। दक्षिण की दृष्टि से देखें तो उत्तर में सर्वलघु का प्रयोग अधिक है। दक्षिण भारतीय मृदंगम् संगति में मुख्य गायक के साथ साथ उसके छन्द के अनुसार संगति करनी होती है। अतः एक मृदंगम वादक को पहले से रचना स्वरूप का ज्ञान होने पर बजाने में बहुत आसानी होती है। रचना मालूम होने पर मृदंगम् वादक को पता होता है कि कहां पर स्वर संगति का प्रयोग है, चिट्ट स्वरम् का स्वरूप क्या है आदि। लेकिन उत्तर में केवल ठेका बजाना होता है। इसलिए रचना का भाव तथा गायक का सांगितिक स्वभाव समझ में आना ही पर्याप्त होता है। पखावज संगति में भी अलग-अलग घराने की गायकी का मूड समझ कर संगति की जाती है। पर बंदिश याद होना उतना जरूरी नहीं होता है दक्षिण की तरह।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 11, Issue 01, January-June, 2023
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2023

दक्षिण भारतीय मृदंगम् तथा उत्तर में पखावज संगति का स्वरूप लगभग मिलता-जुलता ही है। दोनों में मुख्य कलाकार की गायकी तथा प्रयुक्त लयकारी प्रकारों का अनुसरण होता है। फिर भी दक्षिण भारतीय मृदंगम् संगति पखावज की तुलना में क्लिष्ट है क्योंकि धुरपद गायकी में भी कठिन लयकारियों का प्रयोग तो होता है परन्तु जहाँ तक बन्दिश की बात है तो धुरपद की बन्दिशों में लयात्मक क्लिष्टता की प्रवृत्ति प्रायः नहीं होती है। जबकि दक्षिणी शैली में गायकी में भी लयात्मक उतार-चढ़ाव स्वर कोरवई आदि में अवनद्ध वाद्यों के समान लयात्मक जटिलता तथा कौतूहल का समावेश होता है। जिसके कारण गृदंगम् संगति में भी लयात्मक क्लिष्टता आ जाती है।

दक्षिण में वीणा के साथ कोमल संगति है। गंजीरावादक 'के.एन. गोपालकृष्णन' के अनुसार वीणा के साथ गंजीरा की ध्वनि कोमल आघात द्वारा निकाली जाती है। वॉयलिन आदि के साथ खुलकर बजाते हैं। महिला गायिकाओं के साथ भी ध्वनि संयमित आघात द्वारा निकाली जाती है। उत्तर में भी पखावज वादन में रुद्रवीणा के साथ मृदु पखावज संगति है। जबकि सरोद के साथ संगत अपेक्षाकृत जोरदार ढंग से की जाती है। दूसरी बात, उत्तर में तबला संगति गाने के साथ अलग ढंग से की जाती है और वाद्यों के साथ बिल्कुल अलग ढंग से। दोनों में पर्याप्त अन्तर है। गाने के साथ विलंबित ख्याल में ताल का ठेका ही बजता है। जबकि मसीतखानी गत में तबला वादक को ठेका के अतिरिक्त अपना कौशल दिखाने का भी अवसर मिलता रहता है। गायन में लयात्मक प्रवृत्तियों का प्रयोग बहुत अल्प होता है जबकि तंत्रकारी अंग के वादन में अपेक्षाकृत अधिक है। इस तरह का शैलीगत अन्तर गायन और वादन में कर्नाटक संगीत में नहीं है। दक्षिण में दोनों ही लयकारी प्रधान हैं। इसलिए दोनों में मृदंगम् संगति में भी कोई विशेष अन्तर नहीं है। इस प्रकार दक्षिण में गायन, वादन और उनके साथ मृदंगम् संगति में कोई विशेष शैलीगत अन्तर नहीं दिखाई देता। जबकि उत्तर में विशेष रूप से तबला संगति में गायन, वादन के अनुसार पर्याप्त अन्तर है।

जहाँ तक नृत्य संगति की बात है तो इस दृष्टि से उत्तर में कथक के साथ तबला संगति तथा दक्षिण में भरतनाट्यम के साथ मृदंगम् संगति में मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से पर्याप्त समानता पायी जाती है। कथक के साथ तबला संगति करते समय तबला वादक नृत्यकार के पद संचालन तथा पढन्तकर्ता के बोलों के वजन और आघात का अनुसरण करते हुए तत्सम् बोलों द्वारा संगति करता है। दक्षिण भारतीय भरतनाट्यम शैली में भी मृदंग वादक मंच पर प्रस्तुत होने वाले नृत्य प्रकार तथा नृत्यकार के पद संचालन, हाव-भाव तथा नट्टूवांगम के आघात और पढ़न्तकर्ता के सोलकट्टू प्रकारों के वजन और आधार के अनुसार निकटतम बोलों द्वारा संगति करते हैं। अतः दोनों पद्धति में नृत्य संगति की आधारभूत शैली की दृष्टि से समानता है परन्तु कथक की तुलना में भरतनाट्यम् ज्यादा भाव प्रधान है क्योंकि भरतनाट्यम में ताल के साथ साहित्य भी प्रधान है। जबकि कथक में साहित्य पक्ष उतना प्रबल नहीं है जितना कि ताल पक्ष। अतः दोनों शैलियों में इस दृष्टि से अवनद्ध संगति में भी अन्तर आ जाता है।

दक्षिण भारतीय संगीत में कुल मिलाकर तीन प्रकार की संगति है। पहला छन्द के अनुसार, दूसरा सर्वलघु पद्धति और तीसरा विपरीत लयात्मक संगति इनमें सबसे ज्यादा छन्द के अनुसार संगति का प्रयोग होता है तथा सर्वलघु का प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है। ध्यान से देखा जाये तो मुख्य रूप से यही तीनों प्रकार उत्तर भारतीय तबला-पखावज संगति में भी हैं। लेकिन उत्तर दक्षिण में इनके प्रयोग के अनुपात में अन्तर है। दक्षिण में गायकी शैली का प्राधान्य है जिसे हम उत्तर के सन्दर्भ में सहसंगति या छन्द संगति कह सकते हैं। तबला में भी इसका प्रयोग होता है। लेकिन गायन में लगभग नहीं के बराबर तथा वादन में अधिक प्रमाण में होता है तथा नृत्य व धुपद शैली में सर्वाधिक होता है। इस प्रकार गायन में तो ठेका ही प्रधान है। वादन में भी अधिकांश तो ठेका ही है। संगति के दूसरे प्रकार सर्वलघु का प्रयोग दक्षिण में कम है लेकिन उत्तर में तबला संगति में गायन वादन में ठेके के रूप में सर्वाधिक है। कथक नृत्य में ठेका दक्षिण के गायन वादन में सर्वलघु के प्रयोग के समान समझा जा सकता है। तीसरे प्रकार के रूप में विपरीत लयात्मक संगति है। यह भी दक्षिण में अधिक है। उत्तर में तुलनात्मक रूप से कम है तथा नृत्य में बिल्कुल कम है क्योंकि उसमें सह

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 11, Issue 01, January-June, 2023
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2023

संगति (छन्द संगति) का ही प्राधान्य है। इस प्रकार संगति के कुल तीनों प्रकार दोनो जगह वही हैं परन्तु उनका स्वरूप, उनके प्रयोग सम्बन्धी अनुपात के कारण अलग अलग है। यद्यपि पखावज संगति की दृष्टि से दोनों जगह स्थिति एक समान है। दूसरी बात, दक्षिण में सम स्थान तो है पर उसका उत्तर की तरह प्राधान्य नहीं है। उत्तर में तबला वादक कुछ भी तिहाई मुखड़ा टुकड़ा आदि बजाकर सम पर ही आकर वापस ठेका पकड़ते हैं जबकि दक्षिण में मृदंग वादक सम पर आने के बजाय मुक्तई, तीरमानम आदि बंदिश के आरम्भ स्थान पर अर्थात् एडुप्पु पर लाकर समाप्त करते हैं। फिर यहां से बंदिश का साथ करते हैं। यद्यपि उत्तर में सितार सन्तुर, बाँसुरी आदि वाद्यों के साथ सबला संगति में बंदिश के आरम्भ स्थान अर्थात् मुखड़ा स्थान पर तिहाई समाप्त कर गत (बंदिश) का साथ करने की प्रवृति प्रबल रूप में देखी जाती है जिसमें दक्षिण की मृदंगम संगति का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। शोधार्थी का अनुमान है कि उत्तर में इस प्रकार के तिहाई आदि के प्रयोग की प्रवृत्ति तबला संगति में दक्षिण के प्रभाव से आई होगी क्योंकि उत्तर में तिहाई आदि प्रकारों के सम स्थान पर समाप्ति की ही परम्परा शुरू से अधिक प्रबल रही है जबकि दक्षिण में एडुप्पु स्थान पर आने की परम्परा प्रबल है।

यही बात दक्षिण में कोरिप्पु तथा उत्तर में सवाल जवाब की संगति में भी दिखाई देती है। दक्षिण में वीणा वायलिन के साथ संगति में कोरिप्पु को उत्तर में सितार, सरोद आदि वाद्यों के साथ तबला संगति में सवाल-जवाब के रूप में समझा जा सकता है। यद्यपि पल्लवी अनुपल्लवी चरणम् को रचना के स्वरूप, प्रयोग तथा मृदंगम् संगति की दृष्टि से उत्तर के भजन शैली के समान समझा जा सकता है तथा मृदंगम संगति भी इसमें भजन की तबला संगति के समान (मिलती जुलती) दिखाई देती है। जिस तरह उत्तर में तबला वादक भजन के स्थाई के बाद हारमोनियम के साथ खाली जगह को भरते हुए छोटी तिहाई इत्यादि बजाकर गायक को अन्तरा उठाने हेतु लय दिखाता है उसी प्रकार पल्लवी के बाद मृदंगम वादक भी एक मुक्तई बजाकर गायक को पल्लवी के लिए संकेत देता है। तब गायक अनुपल्लवी शुरू करता है। यही प्रक्रिया भजन गायन के साथ तबला संगति में भी देखी जाती है जिसमें वादक अन्तरा के पश्चात् कहरवा आदि प्रकारों की सुन्दर बढ़त करते हैं और एक दो आवर्तन के बाद तिहाई लगाकर पुनः ठेका पकड़ लेते हैं जिसके बाद गायक अगला अन्तरा शुरू करता है। भजन के अन्तिम अन्तरे में "मीरा के प्रभु गिरधर नागर" अथवा "सूरदास हरि नाम भजन बिना" या "कहत कबीर सुनो भई साधो" उक्त पंक्ति के बाद तबला वादक स्फूर्त वादन कर कहरवे आदि के प्रकार तथा लग्गी बजाकर अन्त में तिहाई द्वारा वादन समाप्त करते हैं। लगभग यही प्रक्रिया पल्लवी अनुपल्लवी चरणम् के बाद प्रकारान्तर से मृदंगम् संगति में भी प्रयुक्त होती है।

इस प्रकार प्रस्तुत प्रपत्र के सारे रूप में यह कहा जा सकता है कि दोनों ही संगीत पद्धतियों में संगति के प्रकार वही हैं लेकिन उनके नाम और प्रायोगिक अनुपात में शैलीगत अंतर है जो इनकी प्राचीन भारतीय संगीत से ससंबद्धता को दर्शाता है। भले ही दोनों पद्धति के इन संगति प्रकारों में स्वरूप भेद हो लेकिन भारतीय संगीत को आधार प्रदान करने तथा उसका उपरंजन करने के अपने मूल उद्देश्य में दोनों एक ही है तथा एक नदी की दो धाराओं के समान अपने अपने क्षेत्र में गतिशील भी।

संदर्भ ग्रंथ

1. चौधरी (डॉ०), सुभद्रा, भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर।
2. मिश्र (डॉ०) लालमणि (2005), भारतीय संगीत वाद्य, तृतीय संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ० 212
3. चौधरी (डॉ०) सुभद्रा, भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, पृ० 57
4. पटेल (डॉ०), जमुना प्रसाद (2017), ताल वाद्य परिचय, तृतीय संस्करण, कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ० 69
5. पटेल (डॉ०), जमुना प्रसाद (2017), ताल वाद्य परिचय, तृतीय संस्करण, कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ० 69
6. पटेल (डॉ०), जमुना प्रसाद (2017), ताल वाद्य परिचय, तृतीय संस्करण, कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ० 70
7. Sankaran Trichy, The Rhythmic Principal & Practice of South Indian Drumming, Pg. 138

8. Gopalkrishnan (Dr.) (2007), Mridangam The King of Percussion, Vision Musica Private Ltd. Chennai, Pg. 20
9. Sankaran Trichy, The Rhythmic Principal & Practice of South Indian Drumming, Pg. 140
10. Singaram Pregalathan (2008), Heart Beat of Maestro, Pazhanimani Singaram, South Africa, Pg. 131
11. Sankaran Trichy, The Rhythmic Principal & Practice of South Indian Drumming, Pg. 140
12. मृदंगम वादक, डॉ॰ वी॰ सत्यवर प्रसाद (का॰हि॰वि॰वि॰) से प्राप्त साक्षात्कार अंश, दिनांक 07.12.2011
13. मृदंगम वादक, डॉ॰ वी॰ सत्यवर प्रसाद (का॰हि॰वि॰वि॰) से प्राप्त साक्षात्कार अंश, दिनांक 07.12.2011
14. Paul Nelson David (1991) Mridangam Mind : The Tani Avartanam in Karnatak Music (Volume- I & III) : Ph.D. Wesleyan University, Pg. 41
15. दक्षिण भारतीय मृदंगम् वादक कुलूर उतिया जयचन्द्र राव (बंगलौर) से प्राप्त साक्षात्कार अंश, दिनांक 22.01.2009
16. दक्षिण भारतीय तबला वादक श्री चन्द्रजीत (चेन्नई) से प्राप्त साक्षात्कार अंश, दिनांक 20.12.2008
17. मिश्र, पं॰ विजय शंकर (2005), तबला पुराण, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ॰ 162
18. मिश्र, पं॰ विजय शंकर (2005), तबला पुराण, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ॰ 161
19. श्रीवास्तव (डॉ॰) सुनीता (2011), तबला वादन की तकनीक एवं सौन्दर्य पक्ष, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, पृ॰ 267
20. मिश्र, पं॰ विजय शंकर (2005), तबला पुराण कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ॰ 161